भारत सरकार

भारत

का

विधि

आयोग

न्यायपालिका में सुधार — कुछ सुझाव

रिपोर्ट सं. 230

अगस्त, 2009

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं. 230)

न्यायपालिका में सुधार – कुछ सुझाव

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग द्वारा तारीख 5 अगस्त, 2009 को केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को प्रस्तुत ।

18वें विधि आयोग का गठन भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के आदेश संख्या ए.45012/1/2006-प्रशा. III (एल ए) तारीख 16 अक्तूबर, 2006 द्वारा 1 सितम्बर, 2006 से तीन वर्ष के लिए किया गया ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और सात अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डा. एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा. (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा

डा. के. एन. चन्द्रशेखरन पिल्लै

प्रोफेसर (श्रीमती) लक्ष्मी जामभोलकर

श्रीमती कीर्ति सिंह

न्यायमूर्ति आई. वेंकटनारायण

श्री ओ. पी. शर्मा

डा. (श्रीमती) श्यामला पप्पू

विधि आयोग आई. एल. आई. बिल्डिंग, द्वितीय तल, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001 पर स्थित है ।

विधि आयोग के कर्मचारिवृंद

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
सुश्री पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री जे. टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार
डा. आर. एस. श्रीनेट	:	अधीक्षक (विधि)

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री एस. के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ **http://www.lawcommissionofindia.nic.in** पर इन्टरनेट पर उपलब्ध है ।

© भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्न के सिवाय) इस शर्त के अधीन किसी प्ररूप या माध्यम में निःशुल्क पुनरुत्पादित किया जा सकता है बशर्ते कि यह ठीक-ठीक पुनरुत्पादित किया गया है और भ्रामक संदर्भ में प्रयोग नहीं किया गया है । सामग्री की अभिस्वीकृति भारत सरकार कापीराइट और विनिर्दिष्ट दस्तावेज के शीर्षक के रूप में की जाए ।

इस रिपोर्ट से संबंधित कोई पूछताछ सदस्य-सचिव, भारत का विधि आयोग, द्वितीय तल, आई. एल. आई. भवन, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001, भारत को डाक द्वारा या ई-मेल : **lci-dla@nic.in** द्वारा संबोधित किया जाए ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

आई.एल.आई. भवन
(द्वितीय तल)
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष- 91-11-22384475
फैक्स - 91-11-23383564

अर्ध. शा.सं. 6(3)/154/2007-एल सी(एल एस) 5 अगस्त, 2009

प्रिय डा. वीरप्पा मोइली जी,

विषयः- न्यायपालिका में सुधार – कुछ सुझाव

मैं उपरोक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 230वीं रिपोर्ट अग्रेषित कर रहा हूं ।

2. विधि आयोग ने पहले ही न्यायपालिका में सुधार, जो मेरा सर्वोत्तम प्रिय विषय है, पर अपनी पूर्व रिपोर्टों में भिन्न-भिन्न सिफारिशें की हैं । यह रिपोर्ट उन रिपोर्टों के सातत्य में है और दि जज स्पीक्स शीर्षक वाली मेरी हाल ही के पुस्तक पर आधारित है ।

3. इस रिपोर्ट की सिफारिशें माननीय न्यायमूर्ति श्री अशोक कुमार गांगुली, उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश द्वारा दिए गए सुझाव हैं जो इस प्रकार हैं :–

[1] न्यायालय कार्य-समय का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए । न्यायाधीशों को समयनिष्ठ होना चाहिए और अधिवक्ताओं को तब तक स्थगनों की मांग नहीं करनी चाहिए जब तक यह अनन्यतः आवश्यक न

निवासः सं. 1, जनपथ, नई दिल्ली-110001. टेली. 91-11-23019465, 23793488, 23792745. ई-मेल : ch.lc@sb.nic.in.

हो । स्थगन की मंजूरी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 17 के उपबंधों का कठोरतः पालन करते हुए दी जानी चाहिए ।

[2] एक ही मुद्दों पर कई मामले फाइल किए जाते हैं और एक निर्णय भारी संख्या में मामलों का विनिश्चय कर सकता है । तकनीक की सहायता से ऐसे मामलों को जोड़ देना चाहिए और पूर्विकता आधार पर ऐसे अन्य मामलों के निपटान में उपयोग किया जाना चाहिए ; इससे सारतः बकाए मामलों में कमी आएगी । इसी प्रकार, पुराने मामले, जिसमें से अधिकांश निरर्थक हो गए हैं, को अलग किया जा सकता है और सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जा सकता है और प्रसामान्यतः उनके निपटान में अधिक समय नहीं लगेगा । यह मुख्य मामलों के निपटान के पश्चात् भी फाइल किए गए कई अंतवर्ती आवेदनों के लिए भी सही है । तकनीक की सहायता से ऐसे मामलों का पता लगाया जा सकता है और शीघ्रता से निपटाया जा सकता है ।

[3] न्यायाधीशों को युक्तियुक्त समय के भीतर अवश्य निर्णय देना चाहिए और उस मामले में अनिल राय बनाम बिहार राज्य (2001) 7 एस. सी. सी. 318 वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों का सिविल और आपराधिक दोनों मामलों में ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए ।

[4] चौंका देने वाले बकाया मामलों पर विचार करते हुए, उच्चतर न्यायपालिका में अवकाश कम से कम 10 से 15 दिन कम देना चाहिए और न्यायालय कार्य समय कम से कम आधे घंटे बढ़ाया जाना चाहिए ।

[5] अधिवक्ताओं को अति विस्तृत और पुनरावृत्तिकारक बहस में कटौती करनी चाहिए और इसकी पूर्ति लिखित टिप्पणों से करनी चाहिए ।

किसी भी मामले में मौखिक बहस का समय एक घंटा तीस मिनट से अधिक नहीं होना चाहिए जब तक मामले में विधि का जटिल प्रश्न या संविधान का निर्वचन अंतवर्लित न हो ।

[6] निर्णय स्पष्ट और निर्णायक तथा संदिग्धता से मुक्त होने चाहिए । ये (निर्णय) आगे मुकदमेबाजी को बढ़ावा देने वाले नहीं होने चाहिए ।

[7] अधिवक्ताओं को किन्हीं भी परिस्थितियों में हड़ताल का सहारा नहीं लेना चाहिए और हरीश उप्पल (भूतपूर्व-कप्तान) बनाम भारत संघ (2003) 2 एस. सी. सी. 45 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ के विनिश्चय का पालन करना चाहिए ।

सादर,

भवदीय, ह०.
(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

डा. एम. वीरप्पा मोइली,
केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001

भारत का विधि आयोग

न्यायपालिका में सुधार – कुछ सुझाव

विषय सूची

		पृष्ठ सं.
1.	प्रकरण और विचार	10-36
2.	सिफारिशें	37.39

1. प्रकरण और विचार

1.1 भारत के उच्च न्यायालयों की विरचना और कार्यकरण में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे कि देश के लोगों को निष्पक्ष और शीघ्र न्याय प्राप्त हो सके और प्रणाली में अधिक आस्था हो ।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का चयन और नियुक्ति

1.2 उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद का हमारे संविधान में महत्व है और पदधारी से न केवल निष्पक्ष, पक्षपातरहित और स्वतंत्र बल्कि बुद्धिमान और परिश्रमी होने की आशा है । सामान्य पात्रता मानदण्ड यह है कि व्यक्ति को विधिक/न्यायिक क्षेत्र में दस वर्ष की प्रैक्टिस/सेवा में होना चाहिए ।

1.3 व्यवहारस्वरूप, ऐसा व्यक्ति जिसने जिला न्यायाधीश के रूप में कार्य किया है या राज्य के उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस की है, की नियुक्ति उसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में होती है । प्रायः हम " चाचा न्यायाधीशों" के बारे में शिकायत सुनते हैं । यदि किसी व्यक्ति ने उच्च न्यायालय में मानो 20-25 वर्ष प्रैक्टिस की है और उसे उसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है तो रातोरात परिवर्तन संभव नहीं है । उसके अपने सहकर्मी अधिवक्ता-ज्येष्ठ और कनिष्ठ दोनों - और उसके संबंधी जो उसके साथ प्रैक्टिस कर रहे थे, उससे जुड़े रहते हैं । उच्च न्यायालय में अधिष्ठापित कुछ जिला न्यायाधीशों के आश्रित भी उसी उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस कर रहे हैं । ऐसे भी अवसर आते हैं, जब अधिवक्ता न्यायाधीश ऐसे अधिवक्ता जो उसके साथ प्रैक्टिस कर रहे थे, के साथ अपना बदला निकालते हैं या उसके साथ नरमी बरतते हैं । किसी भी दशा में यह उनकी निष्पक्षता को प्रभावित करता है और न्याय की हानि होती है । साम्या की यह मांग है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि किया गया प्रतीत भी होना चाहिए । सरकारी सेवाओं में विशेषकर वर्ग-2 और इससे ऊपर के अधिकारियों की तैनाती बहुत विशेष कारणों के

सिवाय उनके गृह जिलों में नहीं दी जाती है । किसी भी दशा में ऐसे न्यायाधीश जिसके परिचित और संबंधी उच्च न्यायालय में प्रैक्टिस कर रहे हैं, की तैनाती उसी उच्च न्यायालय में नहीं की जानी चाहिए । यह " चाचा न्यायाधीशों" को विलुप्त कर देगा ।

1.4 कभी-कभी यह प्रतीत होता है कि इस उच्च पद को संरक्षण प्राप्त है । ऐसा व्यक्ति जिसका निकट संबंधी या शुभेच्छु उच्चतर न्यायालय में न्यायाधीश है या रहा था या वरिष्ठ अधिवक्ता है या उच्च राजनीतिज्ञ है, का उच्च न्यायालय में अधिष्ठापन का बेहतर अवसर रहता है । यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा व्यक्ति सक्षम ही हो क्योंकि कभी-कभी कम सक्षम व्यक्ति भी सम्मिलित कर लिए जाते हैं । ऐसे दृष्टांतों की कमी नहीं है । ऐसे व्यक्तियों की कम से कम उसी उच्च न्यायालय में नियुक्ति नहीं की जानी चाहिए । यदि उनकी तैनाती अन्य उच्च न्यायालयों में की जाती है तो इससे विधिक क्षेत्र में उनकी योग्यता और श्रेष्ठता की परख होगी ।

1.5 मुख्य न्यायमूर्ति का पद स्थानान्तरणीय नहीं होना चाहिए । यह परम्परा "आपात काल" अधिरोपित किए जाने के पश्चात् हमारे देश में लागू की गई थी । यदि हम पीछे देखें, तो हम यह पाते हैं कि पहले उच्च न्यायालयों की वर्तमान की तुलना में पहले बेहतर ख्याति थी । मुख्य न्यायमूर्ति जो स्थानान्तरण पर छह मास, एक या दो वर्ष की संक्षिप्त अवधि के लिए आता है, एक नया व्यक्ति ही नहीं बल्कि ऐसे स्थान के लिए अजनबी है, उसे प्रशासनिक विषयों पर नीतिगत विनिश्चयों के लिए अन्य लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है । यदि मुख्य न्यायमूर्ति उसी उच्च न्यायालय से है तो वह न केवल निचली न्यायपालिका के नियंत्रण बल्कि उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के मनोनयन के लिए न्यायपीठ और अधिवक्तागण दोनों मे से व्यक्तियों के मूल्यांकन के लिए बेहतर स्थिति में होगा । इससे उच्च न्यायालयों में रिक्तियों को भरने में अनावश्यक विलम्ब में भी कमी आएगी । यदि उच्च न्यायालयों के कार्यकरण को सुधारना हो तो मुख्य न्यायमूर्तियों के स्थानान्तरण की नीति को तत्काल त्यागना चाहिए । जब

मुख्य न्यायमूर्तियों के स्थानान्तरण की नीति को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अंततः कायम रखा गया था तो देश के एक प्रख्यात न्यायविद् ने यह टिप्पणी की थी कि न्यायपालिका ने आत्महत्या कर ली है । अब समय आ गया है कि इस नीति का पुनर्मूल्यांकन किया जाए ।

सेवानिवृत्ति की आयु

1.6 जब हमने 1949 में संविधान को अंगीकृत और आत्मार्पित किया था तब न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु उच्च न्यायालयों के लिए 60 वर्ष और उच्चतम न्यायालय के लिए 65 वर्ष नियत थी । उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु 1963 में 60 वर्ष से बढ़ाकर 62 वर्ष की गई । उस समय सामान्य जीवन प्रत्याशा लगभग 60 वर्ष थी । सामाजिक और वित्तीय व्यवस्था में परिवर्तनों और चिकित्सा सुविधाओं के साथ वर्तमान सामान्य जीवन प्रत्याशा लगभग 70 वर्ष है । कुछ अपवादों को छोड़कर व्यक्ति 62 वर्ष या यहां तक 65 वर्ष की आयु तक स्वस्थ और सानन्द है । हमारे देश में, न्यायाधीशों के सिवाय कुछ न्यायिक कल्प निकायों में सेवानिवृत्ति आयु बढ़ा दी गई है । अब विभिन्न अधिकरणों में सेवानिवृत्ति आयु बढ़ाकर अध्यक्ष के लिए 70 वर्ष और सदस्यों के लिए 65 वर्ष कर दी गई है । इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के सेवानिवृत्ति आयु कम से कम तीन वर्ष बढ़ाने के लिए संवैधानिक उपबंधों में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है ।

न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि और नई न्यायपीठों का सृजन

1.7 प्रायः प्रत्येक उच्च न्यायालय में, भारी मात्रा में मामले लंबित हैं और न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या की इस भयप्रद स्थिति से निपटने के लिए मुश्किल से पर्याप्त कहा जा सकता है । मामलों का संस्थापन निपटान की तुलना में काफी अधिक है और इससे बकाया मामलों की संख्या बढ़ती है । वादकारी नागरिकों के जीवन का मूल अधिकार अर्थात् शीघ्र न्याय प्रदान प्रणाली के माध्यम से तनाव-मुक्त जीवन का अधिकार है । अब यह

आवश्यक हो गया है कि वर्तमान और संभाव्य लंबित मामलों के अनुसार न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।

1.8 यह भी आवश्यक है कि उच्च न्यायालयों के कार्य का विकेन्द्रीकरण किया जाए, अर्थात् सभी राज्यों में अधिक न्यायपीठों की स्थापना की जाए । यदि न्यायाधीशों और कर्मचारियों की संख्या में कई गुना वृद्धि होती है तो सभी को एक कैम्पस में नहीं रखा जा सकता है । अतः,नए न्यायपीठों की स्थापना आवश्यक है । यह वादकारियों के हित में भी है । न्यायपीठों की स्थापना इस प्रकार की जानी चाहिए कि वादकारी को बहुत दूर तक यात्रा करने की आवश्यकता न पड़े ।

1.9 यह सही है कि नए स्थापनों से धन की अपेक्षा होगी लेकिन यह विकास उपाय विशेषकर, जब देश के चहुंमुखी विकास के लिए प्रयास किए जा रहे हैं, के रूप में आवश्यक है । अतः,धन कोई समस्या नहीं होनी चाहिए । हमें वादकारियों के हित की रक्षा और संरक्षा करनी है । हमें हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं का अस्तित्व वादकारियों के कारण है और वे केवल उनके हेतुकों को पूरा करने के लिए ही हैं ।

1.10 कभी-कभी, कुछ अधिवक्ता नए न्यायपीठों के सृजन और नए भवनों के निर्माण के लिए नए स्थलों के चयन पर आपत्ति उठाते हैं । लेकिन वे अपने व्यक्तिगत, सीमित हित में आपत्तियां उठाते हैं । नए न्यायपीठों का सृजन निश्चित ही वादकारियों और अधिवक्ताओं के लिए निश्चित ही लाभकर है और कहीं न कहीं से इसकी शुरुआत की जानी चाहिए ।

1.11 सर्वोच्च न्यायालय में भी काफी मामले लंबित हैं । अब समय आ गया है जब न केवल उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए और शीघ्रातिशीघ्र रिक्तियों को भरने की सिफारिशें की जाएं बल्कि दक्षिणी और पूर्वी क्षेत्रों में नई न्यायपीठें भी

स्थापित की जाएं ।

कार्य दिवसों और अवकाशों की संख्या

1.12 न्यायिक अधिक्रम के सभी स्तरों पर काफी मामलों के लंबित रहने की स्थिति पर विचार करते हुए, कार्य दिवस की संख्या बढ़ाना आवश्यक हो गया है ।

1.13 इसे न्यायिक अधिक्रम के सभी स्तरों पर लागू किया जाना चाहिए और सर्वोच्च न्यायालय से आरंभ किया जाना चाहिए । न्यायाधीशों के वेतनों और भत्तों में वृद्धि के साथ यह उनका नैतिक कर्तव्य है कि आनुपातिकतः जवाबदेह बने । विदेशों में सम्मेलनों/विधिक सेमिनारों में भाग लेने का अवसर उच्चतम न्यायालय के सभी न्यायाधीशों और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्तियों को दिया जाना चाहिए । भारत सरकार द्वारा उठाए गए मितव्ययी उपायों को ध्यान में रखते हुए बहुत अधिक लागत पर न्यायाधीशों द्वारा विदेशों के बार-बार दौरे से बचना चाहिए ।

कार्य संस्कृति

1.14 हाल में, संपूर्ण देश में कार्य संस्कृति का सामान्य ह्रास हुआ है । सरकारी सेवक अपने कर्तव्यों और दायित्वों के निर्वहन से बचते हैं । न्यायपालिका भी इस बुराई से प्रभावित है ।

1.15 यह उचित समय है जब न्यायिक अधिक्रम के विभिन्न स्तरों के सभी न्यायाधीशों को पूरा समय न्यायिक कार्य में लगाना चाहिए और किसी भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि वे भगवान या समाज से ऊपर हैं । यद्यपि यह भावना अन्तरात्मा से आनी चाहिए किन्तु कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत आवश्यक हैं ।

संवैधानिक विषयों पर वृहत्तर न्यायपीठ या अन्यथा द्वारा एक बार निर्णय आरक्षित किए जाते हैं तो निर्णय युक्तियुक्त समय के भीतर दिए जाने चाहिए । निर्णय देने में काफी और अतिविलम्ब होता है जिससे लोक

हित में बचना चाहिए । यदि इन सुझावों का क्रियान्वयन किया जाता है तो निश्चित ही न्यायालयों के कार्यकरण में सुधार होगा ।

शीघ्र न्याय

1.16 शीघ्र न्याय प्रत्येक वादकारी का अधिकार है । इस तथ्य से इनकार नहीं है कि विलंब से न्याय विफल हो जाता है । वर्तमान व्यवस्था में, इसमें मामले का अंतिम रूप से विनिश्चय होने में प्रायः 10-20-30 या और अधिक वर्ष लग जाते हैं । हाल के वर्षों में, मुकदमेबाजी में काफी वृद्धि हुई है । जनसंख्या वृद्धि, विकसित वित्तीय स्थिति, सहनशीलता की कमी और भौतिक जीवनयापन भी इसके कुछ कारण हो सकते हैं । लेकिन न्याय प्रदान करने में विलम्ब को प्रभावी कदम उठाकर दूर किया जा सकता है अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब संपूर्ण व्यवस्था चरमरा जाएगी । हाल ही में, दिल्ली उच्च न्यायालय के एक माननीय न्यायाधीश ने यह गणना की है कि उस उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या के साथ बकाया मामलों के निपटान के लिए 464 वर्षों की आवश्यकता होगी । स्थिति उतनी धुंधली नहीं है लेकिन फिर भी भयावह है ।

1.17 इलाहाबाद उच्च न्यायालय में, साढ़े आठ लाख से अधिक मामले लंबित हैं । वर्ष 1980-82 की आपराधिक अपीलें और वर्ष 1990-95 की आपराधिक पुनरीक्षण मामले अभी लंबित हैं । द्वितीय सिविल अपीलों और रिट मामलों की भी प्रायः वही स्थिति है । यही स्थिति सभी अन्य उच्च न्यायालयों में है । मामलों का संस्थापन निपटान की तुलना से काफी अधिक है और यह न्यायिक अधिक्रम के लगभग सभी स्तरों पर बकाया मामलों को बढ़ाता है । अधीनस्थ न्यायालयों में भी, लंबित मामलों की संख्या काफी अधिक है ।

1.18 जैसाकि ऊपर कहा गया है, इस आकस्मिकता से निपटने के लिए न्यायाधीशों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि और यथाशीघ्र तत्समान अवसंरचना अपेक्षित है । यदि न्यायाधीश और वर्ग 3 और वर्ग 4 कर्मचारियों की

नियुक्ति तीन से छह माह के भीतर की जाती है तो आधारभूत अवसंरचना में समय लगेगा । तथापि, धन की समस्या नहीं होनी चाहिए । इसे विकासात्मक कार्य, हमारे संविधान की उद्देशिका में अनुष्ठापित सिद्धांत सब लोगों को न्याय उपलब्ध कराने का कार्य समझा जाना चाहिए ।

1.19 गुजरात राज्य और दिल्ली में कुछ सांयकालीन न्यायालय लगाकर प्रयास किए गए हैं । ऐसी ही व्यवस्था अन्य राज्यों में भी लागू की जा सकती है ।

1.20 संविधान की उद्देशिका के वादे के अनुसार अपने सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय उपलब्ध कराने का संवैधानिक वादे को तब तक पूरा नहीं किया जा सकता है जब तक राज्य के तीनों अंग अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका साथ-साथ मिलकर भारतीय गरीबों को अपनी न्यायिक प्रणाली की समान पहुंच उपलब्ध कराने के लिए कोई उपाय नहीं निकालते ।

1.21 शीघ्र न्याय भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत है । आपराधिक विचार के शीघ्र निपटान में कोई विलम्ब संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत प्राण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन करता है । न्यायिक बकाया मामलों पर बहस से बहुत से विचार आए हैं कि कैसे न्यायपालिका को इसे सुव्यवस्थित किया जा सकता है । मामलों के निपटान में अति विलम्ब के कारण मामलों के ढेर से भयभीत होकर, त्वरित निपटान न्यायालयों या विशेष न्यायालयों का गठन किया जाना चाहिए । इस प्रकार, त्वरित निपटान न्यायालय परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के मामलों पर विचार करने के लिए होने चाहिए क्योंकि ऐसे मामलो के लंबित रहने का ग्राफ बहुत ऊंचा और भयावह है । शीघ्र न्याय उपलब्ध कराकर न्यायपालिका में लोगों की आस्था लौटाने का यह उचित समय है ।

1.22 किसी आपराधिक मामले का वर्षों तक चलते रहना असामान्य बात

नहीं है । इस समय के दौरान, अभियुक्त "वेदना" के क्षेत्र से " सहानुभूति" के क्षेत्र तक जाता है । साक्षियों पर या तो बलशाली या धनी व्यक्ति हावी हो जाते हैं या वे अभियुक्त के प्रति सहानुभूतिशील हो जाते हैं । परिणामतः वे पक्षद्रोही हो जाते हैं और अभियोजन असफल हो जाते हैं । कुछ मामलों में, पुनःस्मरण धूमिल पड़ जाता है या साक्षी मर जाते हैं । इस प्रकार, न्यायलयों में काफी विलम्ब न केवल अभियुक्त बल्कि पीड़ित व्यक्ति और राज्य को भी काफी कठिनाई कारित करता है । ऐसा अभियुक्त जिसे जमानत पर नहीं छोड़ा गया है, कई महीनों तक कारागार में रहता है या वर्षों तक विचारण की समाप्ति तक प्रतीक्षा करता रहता है । इस प्रकार अधिकांश गंभीर अपराधियों के लिए दोषसिद्धि और दण्ड की निश्चितता बढ़ाने के लिए अभियोजन के प्रबंध को सुधारने के लिए प्रयास किए जाने की अपेक्षा है । यह अनुभव किया गया है कि मामले का अन्वेषण करने के लिए सशक्त पुलिस कार्मिकों द्वारा न्यायालय कार्य में शिथिलता बढ़ती जा रही है ।

1.23 आजकल न्यायपालिका में पहले से कहीं अधिक सार्वजनिक विश्वास की जरूरत है । संविधान में अनुष्ठापित सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों को उनकी एकान्तता और स्वतंत्रता कायम रखते हुए प्राप्त करने के कार्य में न्यायपालिका को विशेष भूमिका अदा करनी होती है । न्यायाधीशों को लोगों के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय दिलाने के कार्य में सामाजिक परिवर्तनों से भिज्ञ होना चाहिए ।

आसान पहुंच में न्याय

1.24 भारतीय न्यायिक प्रणाली निरन्तर नई चुनौतियों, नए आयामों और नए संकेतों के प्रभाव में आती रहती है और ऐसे विश्व में जीना पड़ता है जिसमें संभवतः केवल वास्तविक निश्चितता यह है कि कल की परिस्थितियां आज की जैसी नहीं होंगी । न्यायपालिका को अधिक पहुंचयोग्य बनाकर, आम जनता को सेवा उपलब्ध कराने के लिए उपलब्ध

संसाधनों का उपयोग कर और विलम्ब को कम कर तथा न्यायालयों को अधिक दक्ष और कम भयावह बनाकर न्यायालयों के प्रति भ्रम को दूर करने का समय आ गया है ।

1.25 मामलों के बोझ के संबंध में,राज्य सरकारें या केन्द्रीय सरकार के कंधों पर अधिक दायित्व है । न्यायालयों में वे (सरकार) सर्वाधिक मुकदमेबाज हैं । उन्हें तभी न्यायालयों में आवेदन करना चाहिए या मामलों का प्रतिवाद करना चाहिए यदि आवश्यक हो, न केवल प्रतिवाद करने की दृष्टि से कांधी मारने या प्रतिवाद के लिए । सेशन न्यायालयों द्वारा लिया जाने वाला समय अधिकांश मामलों में कुछ हद तक नियंत्रणाधीन है और अधिकांश मामले युक्तियुक्त समय-सीमा में विनिश्चत किए जाते हैं । मुख्य समस्या मजिस्ट्रेट न्यायालयों और उच्च न्यायालयों में मामलों के अधिक लंबित रहने के बारे में है । परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन फाइल परिवाद मामलों का विनिर्दिष्ट रूप से विचारण करने के लिए अतिरिक्त न्यायालयों का होना नितान्त आवश्यक है । वर्तमान कार्यस्थिति उस उद्देश्य को ही विफल करती है जिसके लिए उपबंध को परक्राम्य लिखत अधिनियम में सम्मिलित किया गया था । इसके अतिरिक्त, सेवानिवृत अधिकारियों को विशेष मजिस्ट्रेट नियुक्त कर विशेष मजिस्ट्रेट द्वारा विनिश्चित किए जाने वाले अधिकांश छोटे अपराधों को सामान्य न्यायालय चैनल से निकाला जाना चाहिए ।

1.26 शीघ्र विचारण केवल शीघ्र न्याय दिलाने के लिए ही अपेक्षित है बल्कि यह संविधान के अनुच्छेद में यथापरिकल्पित प्राण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मूल अधिकार का अभिन्न भाग भी है । विधि आयोग इस रिपोर्ट में ऐसे विलम्ब की पहचान कर और कारणों का उपचार कर विशेषकर मुख्य बाधाओं और अड़चनों जो आपराधिक मामलों के निपटान में विलम्ब कारित करते हैं, की पहचान करने के पश्चात् कुछ सुझाव प्रस्तुत कर रहा है ।

1.27 भारत के विधि आयोग की यह दृढ राय है कि मामलों के लंबित रहने के भयावह स्थिति और शीघ्र तथा निष्पक्ष विचारण के वादकारी के संवैधानिक अधिकारों पर विचार करते हुए भारत सरकार को राज्य प्राधिकारियों को देश में त्वरित निपटान न्यायालयों के गठन का निदेश देना चाहिए जो अकेले विधि आयोग की राय में मामलों के लंबित रहने की शाश्वत समस्या को सुलझाएगा।

सत्यनिष्ठा, सदाचार और नीतिशास्त्र

1.28 सत्यनिष्ठा पद का जब मानवीय गुणों के प्रति प्रयोग किया जाता है तब यह ईमानदारी, विश्वसनीयता, शुद्धता, भरोसापन, सच्चरित्रता, लगन, सम्मान, मर्यादा आदि के प्रति निर्दिष्ट करता है । महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि "जीवन की शुचिता सर्वोच्च और विशुद्ध कला है ।"

1.29 और मार्कस औरेलियस के शब्दों में, "व्यक्ति को ईमानदार होना चाहिए, लेकिन उसे ईमानदार बनाकर नहीं रखा जा सकता।" सत्यनिष्ठावान व्यक्ति उस समय भी ठीक कार्य करेगा जब उसकी कोई निगरानी भी न कर रहा हो । महात्मा गांधी ने कहा कि " सभ्यता, संस्कृति और गरिमा का असली परीक्षा चरित्र है न कि आभूषण ।"

सुशासन

1.30 "सुशासन" पद की व्युत्पत्ति लैटिन पद से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ परिचालन है । यह प्रक्रियाओं और प्रणालियों को निर्दिष्ट करता है जिसके द्वारा संगठन या समाज चलता है ; प्रक्रियाएं जिसके द्वारा विनिश्चय लिए जाते हैं जो प्रत्याशाओं को परिभाषित करते हैं, शक्ति प्रदान करते हैं या कार्यपालन को सत्यापित करते हैं ।

1.31 "लोक पद एक सार्वजनिक विश्वास है" शब्दों द्वारा व्यक्त लोक अधिकारी की आदर्श अवधारणा यह द्योतित करती है कि अधिकारी को आम जनता द्वारा लोक शक्ति सौंपी गई है ; यह कि अधिकारी उनके

फायदे के लिए ही उपयोग किए जाने के लिए विश्वास में यह शक्ति धारित करता है न कि स्वयं या कुछ लोगों के फायदे के लिए ; और यह कि अधिकारी को अपने निजी कार्यों में कभी ऐसा आचरण नहीं करना चाहिए जो सार्वजनिक विश्वास का उल्लंघन करता हो ।

1.32 नागरिकों की यह विधिसम्मत प्रत्याशा है कि लोक सेवक निष्पक्षता से लोकहित की सेवा करेंगे और दैनिक आधार पर लोक संसाधनों का उचित प्रबंध करेंगे । बढ़ते लोकतंत्रीकरण और भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप लोक पदधारियों की स्पष्टता में वृद्धि हुई है । आजकल ये जटिल प्रश्न पूछे जाते हैं कि वह कौन सा मार्ग है जिससे मामलों पर विचार किया जाए, विनिश्चयों का निर्णय किया जाए, विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाए और लोक सेवकों की नैतिकता सुनिश्चित की जाए । नेताओं को उनके ऐसे कार्य के लिए जवाबदेह होने की मांग बढ़ती जा रही है जिनसे ऐसे समुदाय प्रभावित होते हैं ।

भ्रष्टाचार-निरोध

1.33 लोकपद के प्रति निर्देश से भ्रष्टाचार को व्यक्तिगत अभिलाभ के प्रयोजनों के लिए शक्ति के दुरुपयोग के रूप में परिभाषित किया गया है ।

1.34 सार्वजनिक कार्यों में, प्रायः प्राइवेट सम्पत्ति और लोक शक्ति के बीच विरोध उद्भूत होता है । प्रायः यह स्वार्थपन और लालच का परिणाम है । महात्मा गांधी ने कहा है कि पृथ्वी प्रत्येक व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त व्यवस्था करती है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की लालच को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है । विरोध को दूर करने के लिए मध्यस्थता की आवश्यकता है । ऐसी संस्थाएं जो प्राइवेट संपत्ति और लोक शक्ति के बीच माध्यम होने में असफल रहते हैं,मृत होने के जोखिम से ग्रस्त हो जाते हैं और संपत्ति हितों द्वारा फंस जाते हैं । भ्रष्टाचार ऐसी असफलता का एक लक्षण है जिसके द्वारा व्यक्तिगत हित सार्वजनिक लक्ष्य पर हावी हो जाते हैं ।

1.35 भ्रष्टाचार से लड़ाई सुशासन के संवर्धन का एक पहलू है । लेकिन सुशासन मुद्दे अकेले भ्रष्टाचार विरोध से कहीं अधिक व्यापक हैं । उदाहरणार्थ, लोक अधिकारी ईमानदार हो सकता है फिर भी अकुशल या अक्षम । इसलिए सुशासन के संवर्धन के प्रयास भ्रष्टाचार-निरोध अभियान से व्यापक होना चाहिए ।

1.36 वर्ष 1990 में हवाना क्यूबा में अपराध निवारण और अपराधियों का बर्ताव पर आठवें यूनाइटेड नेशन्स कांग्रेस द्वारा अंगीकृत "अधिवक्ताओं की भूमिका पर मूलभूत सिद्धांत" के अनुच्छेद 14 में यह उल्लेख है :–

" अपने मुवक्किलों के अधिकारों का संरक्षण करने में और न्याय का संवर्धन करने में अधिवक्ता राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यताप्राप्त मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं को कायम रखना चाहेंगे और हर समय विधि तथा विधि वृत्ति के मान्यताप्राप्त मानकों और नीतिशास्त्र के अनुसार स्वतंत्र रूप से और परिश्रम से कार्य करेंगे । "

1.37 सभी विधि प्रैक्टिशनरों, राज्य विधि अधिकारियों और न्यायिक अधिकारियों की उनकी दक्षता में सुधार और कायम रखने के लिए सतत् व्यावसायिक विकास आवश्यक है । पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के लिए तंत्र बनाया जाना चाहिए और अधिवक्ताओं के लिए प्रैक्टिस प्रमाणपत्रों के नवीकरण के लिए पूर्ववर्ती-शर्त के रूप में उनकी उपस्थिति सुनिश्चित की जानी चाहिए ।

1.38 भारतीय संविधान ऐसी सभी विधियों का स्रोत है जो हमारे देश में लागू थीं और हैं । संविधान सभी भारतीय नागरिकों को सार्वजनिक और व्यक्तिगत अधिकारों के समान संरक्षण की गारंटी देता है । लेकिन इन अधिकारों का कोई फायदा नहीं है यदि व्यक्ति के पास उन्हें प्रवृत्त करने का कोई साधन नहीं है । अधिकारों का प्रवर्तन न्यायालयों के माध्यम से होना चाहिए, लेकिन न्यायिक प्रक्रिया बहुत जटिल, खर्चीली और विलंबकारी है जो निर्धन लोगों को न्याय से दूर रखती है ।

1.39 देश में अंग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत में वर्तमान विधिक प्रणाली का वर्तमान पैटर्न स्थापित किया । वर्ष 1857 में, देश में औपचारिक विधिक शिक्षा देने की दिशा में पहला कदम उठाया गया था । अंग्रेजों ने 1857 की क्रान्ति के पश्चात् कानून बनाने शुरु किए जिसके परिणामस्वरूप एक ऐसी विधिक प्रणाली लागू हुई जिसे भारत में धार्मिक सम्प्रदायों विषयक विधियों के अपवाद के साथ यूनाइटेड किंगडम में तत्समय लागू विधिक प्रणाली की तरह परिवर्तित किया गया ।

न्याय की पहुंच

1.40 आम व्यक्ति द्वारा यथा मान्य "न्याय की पहुंच" की पारम्परिक अवधारणा न्यायालय की पहुंच है । आम व्यक्ति के लिए न्यायालय एक ऐसा स्थल है जहां उसे न्याय मिलता है । लेकिन चूंकि अधिनियमित विधियां अंग्रेजी में थीं और सभी न्यायालयों की कार्यवाहियां भारतीय जनता के लिए अधिक जटिल,भ्रमकारी और खर्चीली थीं इसलिए "अंग्रेजी" से अनभिज्ञ भारतीय जनता ने न्याय प्रदान प्रणाली की पहुंच को कठिन पाया । समाधान के रूप में, विधिक विश्व और आम आदमी के बीच प्रभावी मध्यस्थ के रूप में अधिवक्ताओं की आवश्यकता महसूस की गई । अतः,हम यह पाते हैं कि विभिन्न विधियों का हिमायती होने के अलावा अधिवक्ता का न्याय दिलाने के लिए निरक्षर और पददलित की सहायता करने का भी सामाजिक उत्तरदायित्व है ।

1.41 समकालीन परिदृश्य में राज्य एक कल्याणोन्मुख संस्था है । अपने विधिक विवादों के समाधान और अपने संवैधानिकतः गारंटीकृत मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए न्यायिक और गैर-न्यायिक विवाद समाधन तंत्र जो सभी नागरिकों की पहुंच में होना चाहिए,उपलब्ध कराना कल्याणकारी राज्य के अति महत्वपूर्ण कर्तव्यों में से एक है । गरीबी,अज्ञानता या सामाजिक असमानता इसके प्रति अवरोध नहीं होने चाहिए ।

1.42 संविधान के अनुच्छेद 39क में समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता का उपबंध है । उक्त अनुच्छेद राज्य पर यह बाध्यता अधिरोपित करता है कि समान अवसर के आधार पर न्याय का संवर्धन करे और वह, विशिष्टतया, सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए,उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा ।

1.43 लोक अदालत, न्याय पंचायत, विधिक सेवा प्राधिकरण भी लोगों को न्याय दिलाने और यह सुनिश्चित करने के अभियान के भाग हैं कि सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन जैसे विभिन्न अवरोधों के बावजूद सभी लोगों को समान न्याय उपलब्ध हों ।

1.44 भारी जनसंख्या, अधिक मुकदमेबाजी और पर्याप्त अवसंरचना की कमी मुख्य घटक हैं जो हमारी न्याय प्रणाली को नुकसान पहुंचाते हैं । विधिक सेवा प्राधिकरणों के सतत् प्रयासों के माध्यम से नियमित न्याय निर्णयन प्रक्रियाएं हमारी प्रणाली की इन बीमारियों को दूर करने में उत्प्रेरक का कार्य करेंगी ।

1.45 स्थायी और सतत् लोक अदालतों द्वारा मुकदमेबाजी-पूर्व प्रक्रम पर विधिक विवादों का निपटान इस देश के नागरिकोंको व्यय रहित न्याय उपलब्ध कराएगा । यह न्यायालयों को छोटे मामलों के अतिरिक्त और अपरिहार्य भार से भी बचाता है जो उन्हें अधिक विरोधी और पुराने मामलों को अपना न्यायालय समय लगाने के लिए समर्थ बनाता है । विधिक साक्षरता और विधिक भिज्ञता हमारे देश के नागरिकों के लिए विधि के समक्ष समता सुनिश्चित करने का उद्देश्य प्राप्त करने के मुख्य साधन हैं ।

1.46 जैसाकि हम आजकल इसे जानते हैं देश की विधिक वृत्ति दो शताब्दी से अधिक पुरानी है । विधिसम्मत रूप से हम यह प्रत्याशा कर सकते हैं कि इस वृत्ति का भविष्य बहुत उज्जवल होना चाहिए, विशेषकर

हमारा देश विभिन्न क्षेत्रों और मानव अधिकार जानकारी के संदर्भ में व्यापक छलांग लगा रहा है । लोकहित इसका आदर्श वाक्य और न्याय हित में सेवा उसका सिद्धांत होना चाहिए । महात्मा गांधी एक बैरिस्टर थे जिन्होंने सत्य को संकट में डाले बिना विधि की प्रैक्टिस की । अब्राहम लिंकन ने कहा : "जब कभी आप ऐसा कर सकें तो मुकदमेबाजी को हतोत्साहित करें और अपने पड़ोसियों को समझौता करने पर राजी करें । उन्हें बताएं कि कैसे नाममात्र का विजेता प्रायः फीस, व्यय और समय का वास्तविक हानि उठाने वाला होता है ।"

1.47 हमारे चेहरे पर इस तथ्य की नितान्त वास्तविकता स्पष्ट दिखाई देती है कि इस देश की 70% से अधिक जनता निरक्षर है । संविधान की उददेशिका आदर्श उद्देश्य और नीति निदेशक सिद्धांतों में व्यक्त महत्वपूर्ण इच्छा और आशाएं कागज पर ही बनी रह जाएंगी जब तक इस देश के लोगों को साक्षी नहीं बनाया जाता ।

आनुकल्पिक विवाद समाधान

1.48 समय की गति के साथ-साथ, नई मांगें उभरती हैं जो कभी-कभी विद्यमान प्रणाली को प्राचीनतम या गैर उपयोगी बनाती है जिससे उसके स्थान पर नई प्रणाली को प्रतिस्थपित करने की अपेक्षा होती है । विधि को समाज की मांगों के भी अनुरूप होना चाहिए । आनुकल्पिक विवाद समाधान तरीके इस दूरदर्शिता के परिणामस्वरूप विकसित हुए ।

1.49 प्रथम क्षेत्र जहां सुलह को विधि प्रभावी रूप से लागू की गई और मान्यता प्रदान की गई, श्रम विधि अर्थात् औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 है । सुलह को कानूनी रूप से कर्मकारों और प्रबंध के बीच विवादों के संबंध में विवाद निपटान के प्रभावी तरीके के रूप में मान्यता प्रदान की गई है । केवल ऐसा क्षेत्र जहां भारत के न्यायालयों ने आनुकल्पिक विवाद समाधान को मान्यता प्रदान किया गया, विवाचन के क्षेत्र हैं । एक अन्य क्षेत्र जहां ए डी आर को भारत में मान्यता प्रदान की गई है, कुटुम्ब विधि

है । ऐसा विधान, जो ए डी आर पर बल देता है, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 है ।

1.50 लोक अदालतों के माध्यम से मामलों के निपटान के लिए विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम में उपबंध किए गए हैं ; साधारणतः लोक अदालत सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी, अधिवक्ता और समाज कल्याण संगम का व्यक्ति अधिमानतः महिला से मिलकर बनती है । लोक अदालतों को पक्षकारों के बीच समझौता या निपटान करके उन्हें निर्दिष्ट विवादों के निपटारे की शक्ति दी गई है ; लोक अदालतों के अधिनिर्णयों को सिविल न्यायलयों की डिक्री या अन्य न्यायालयों या अधिकरणों के आदेश समझे जाते हैं ; लोक अदालत द्वारा किए गए प्रत्येक अधिनिर्णय विवाद के सभी पक्षकारों पर अंतिम और आबद्धकर माने जाते हैं और अधिनिर्णय के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई अपील नहीं की जाती है ।

ए डी आर के फायदे

1.51 ए डी आर के कई फायदे हैं – यह कम खर्चीला है, कम समय लेने वाला है, न्यायालयों में मामलों के संचालन के बनिस्बत तकनीकों से मुक्त है, अंतर्वलित पक्षकार किसी न्यायालय के समक्ष प्रकटन के किसी भय के बिना राय अपने मतभेदों पर चर्चा करने के लिए स्वतंत्र हैं और अंततः, कोई पक्षकार न तो जीतता है और न ही हारता है, इस प्रकार उनकी शिकायतें उनके बीच संबंधों को कोई नुकसान कारित किए बिना दूर की जाती हैं ।

1.52 दूसरा सही और स्वागतयोग्य कदम उपभोक्ता विवादों और उससे संबंधित विषयों के निपटान के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का अधिनियमन था। उपभेक्ता संरक्षण अधिनियम का उद्देश्य उपभोक्ता शिकायतों के प्रभावी, व्ययरहित, साधारण और शीघ्र प्रतितोष के लिए उपबंध करना था जिसे सिविल न्यायालय करने में सक्षम नहीं है ।

1.53 कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 का अधिनियमन विवाह और कुटुम्ब क्रियाकलापों से संबंधित और उससे संबद्ध विषयों के विवादों के सुलह के संवर्धनऔर उसका शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने की दृष्टि से कुटुम्ब न्यायालयों की स्थापना के लिए किया गया था ।

1.54 भारत के विधि आयोग ने अपनी 59वीं रिपोर्ट (1974) में इस बात पर बल दिया था कि कुटुम्ब से संबंधित विवादों पर विचार करने के लिए न्यायालय को साधारण सिविल कार्यवाहियों में अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण से भिन्न मानवीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और उसे विचारण के प्रारंभ के पूर्व समझौते का युक्तियुक्त प्रयास करना चाहिए ।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

1.55 न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए व्यक्तियों का चयन करने में, यह सुनिश्चित करने का हर प्रयास करना चाहिए कि विवाह संस्था के संरक्षण और अनुरक्षण की आवश्कयता के प्रति वचनबद्ध और बच्चों के कल्याण का संवर्धन करने वाले तथा अपने अनुभव के कारण अर्ह और सुलह और परामर्श द्वारा विवादों के निपटान के संवर्धन में कुशल व्यक्तियों का चयन हो । सामाजिक,आर्थिक और राजनैतिक – सभी पहलुओं में न्याय इस देश के बहुसंख्यकों को और समय गंवाए बिना दिया जाना चाहिए – यह समय की मांग है ।

न्यायपालिका के तीन खिलाड़ी

1. पहला खिलाड़ी सरकार है । सरकार उन रिक्तियों को न भर कर अधिक दोषी है जिसे वे काफी पहले से जानते हैं । सरकार अच्छा पुस्तकालय, टाइपिस्ट आदि जैसी आधारभूत सुविधाओं समेत गुणज्ञ न्यायाधीश नियुक्त करने में और उचित अवसंरचना उपलब्ध कराने में असफल रहती है ।

1.57 दूसरे खिलाड़ी अधिवक्ता हैं । हमें महसूस करना चाहिए कि

स्थगन, चाहे वे मुवक्किलों के पक्ष में हों,प्रणाली के पक्ष में नहीं हैं । अनेक विनियामक मामलों में, अपीलों या स्थगनों की वास्तविक आवश्यकता नहीं है । वर्तमान भारी बकाया मामलों जैसी समस्या को सुलझाने के लिए व्यावहारिक साधनों पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । अधिवक्ताओं का आचरण भी संदेहास्पद हो गया है । एक ऐसी विधिज्ञ परिषद् है जो अधिवक्ताओं के आचरण पर निगरानी रखता है लेकिन यह मुश्किल से ही कलंकित अधिवक्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई करता है । सारी बातें परम्परागत हो गई हैं और अपना अर्थ खो रही हैं ।

1.58 वस्तुतः,तीसरा खिलाड़ी न्यायाधीश है । जब तक वे कार्य आचार-शास्त्र का प्रदर्शन नहीं करते तब तक कोई सिफारिश उनके लिए उपयोगी नहीं हो सकती । सभी अन्य क्षेत्र की तरह, निष्पक्षता, गति और गुणता न्यायपालिका के लिए मुख्य मूल्य होने चाहिएं ।

1.59 न्यायपालिक काफी दबाव में है । हमारे पास इस समय प्रति दस लाख जनसंख्या पर लगभग 10-11 न्यायाधीश हैं । हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने निदेश दिया कि हमारे पास इससे 5 गुना अधिक न्यायाधीश होने चाहिएं जितने अभी हमारे पास हैं ।[1]

सुधार

1.60 सभी सुधार समेकित ढंग से किए जाने की आवश्यकता है । पुलिस, अभियोजन, अधिवक्ता और न्यायालय को एक साथ जोड़ने पर विचार किया जाना चाहिए । न्यायिक सुधार का विषय अब बहुत महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि आम जनता ने प्रणाली में अपनी आस्था खो दी है । न्यायिक जवाबदेही न्यायिक सुधार के भारी क्षेत्र से जुड़ा है । प्रत्येक व्यक्ति मामलों के निपटान में काफी विलंब से चिन्तित है और न्यायिक सुधार के लिए कार्यसूची को सर्वप्रथम इस बकाए मामलों की समस्या से सर्वप्रथम निपटाया जाना चाहिए । हमने काफी विधि आयोग की रिपोर्टें और विभिन्न

[1] आल इंडिया जजेज़ एसोसिएशन बनाम भारत संघ (2002) 4 एस सी सी 247.

सुझावों को देखा – जिसमें से एक उच्च न्यायालयों के कुछ कार्यभार लेने के लिए अधिकरणों की विरचना है लेकिन अब भी, उच्च न्यायालय मामलों की भारी संख्या से बोझिल है । न्यायपालिका में मानव शक्ति की वृद्धि समय की मांग है । इसके अलावा,न्यायपालिका द्वारा वहन की जाने वाली समस्या को भी सुलझाया जा सकता है, यदि हमारे पास उन मामलों जो कार्यसूची को अवरुद्ध करते हैं, के बारे में वैज्ञानिक आंकड़ा हो ।

लंबित रहना

1.61 लंबित रहना किसी प्रणाली का सामान्य लक्षण है लेकिन न्यायालयों में भारी अनुपात में मामले लंबित हैं । इसलिए सभी मामलों के लिए समय सीमा विहित करना न्यायालयों की आवश्यकता होगी । इससे निपटने के लिए, एक विहित सीमा नहीं हो सकती है लेकिन इस तरह के मामलों की पहचान करने और पूर्विकता देने की आवश्यकता है । इसलिए समय मानक निर्धारित करना आवश्यक है और यह भिन्न-भिन्न मामलों के लिए और भिन्न-भिन्न न्यायालयों के लिए उनकी निपटान क्षमता के आधार पर भी भिन्न-भिन्न होगा । यह न्यायालयों का कार्यपालन और न्यायिक जवाबदेही का निर्धारण करने के लिए भी आवश्यक होगा ।

तकनीक

1.62 हमारे पास आधुनिक तकनीक है जो हमें काफी सूचना एकत्र करने और मुख्य न्यायमूर्तियों को उपलब्ध कराने में सुकर बनाता है जिससे कि वे अपनी मानव शक्ति का आबंटन दक्षतापूर्वक करने में समर्थ हो सकें । अंकीय तकनीक और औजार उस समय से जब मामले न्यायालय में संस्थित किए जाते हैं से अपील के अंतिम प्रक्रम तक संपूर्ण डाटाबेस से सूचना एकत्र करने के लिए हमारे नियंत्रणाधीन है । न्यायिक डाटाबेस बनाने से यह संस्था के रूप में न्यायालयों के कार्यपालन के निर्धारण में हमें समर्थ बनाएगा और मुख्य न्यायमूर्ति न्यायाधीशों के व्यक्तिगत कार्य पालन का निर्धारण करने हेतु इसका उपयोग करने में समर्थ होंगे । यह यह

पहचान करने में काफी मदद करेगा कि बकाया क्या है, किस प्रकार के मामले कार्यसूची, आदि को अवरुद्ध कर रहे हैं ।

1.63 अंकीय संसाधन प्रबंधन के भाग के रूप में हमारे पास होम पेजेज और वेबसाइट हैं जहां न्यायालयों के निर्णयों को तत्काल डाला जा सकता है। जहां यह निर्णयों की प्रतियां देने में न्यायालयों को काफी समय लगता है ; होम पेज पर तत्काल डालने से वे प्रत्येक व्यक्ति को आसानी से और तत्काल उपलब्ध होंगे । यह निर्णयों की प्रक्रिया को पहुंच योग्य होने में शीघ्रता करने के लिए प्रभावी रूप से तकनीक का उपयोग करने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है ।

1.64 अब, अंकीय तकनीक डाटाबेस, ई आर पी टूल, न्यायालय प्रबंधन पद्धति जैसे नए पैकेज हमें प्रस्तुत करता है – ये न्यायालयों की उत्पादकता बढ़ाने में सहायता करेंगे ; वीडियो कान्फ्रेन्सिंग - जिसके माध्यम से हम साक्ष्य अभिलिखित कर सकते हैं । इसलिए,न्याय की गुणता बढ़ाने और सच्चाई का पता लगाने के लिए न्यायालय के पास काफी तकनीक उपलब्ध है, क्योंकि कुल मिलाकर न्याय सच्चाई का निष्कर्ष है । यदि जवाबदेही के प्रश्न पर पुनः विचार करते हैं, तो पाते हैं कि किसी संस्था की तरह न्यायपालिका किसी बुराई से रहित नहीं है लेकिन फिर भी वे न्याय के मंदिर के समान है । लेकिन अब भी, भ्रष्टाचार स्वीकार्य नहीं हो सकता है । कोई कैसे भ्रष्टाचार से निपट सकता है ? महाभियोग को भ्रष्ट न्यायाधीशों से निपटने के उपचार के रूप में सोचा गया था, लेकिन हम यह पाते हैं कि यह ठीक से कार्य नहीं कर रहा है ; हम समकक्ष समिति की तरह किसी आंतरिक संस्थागत तंत्र का पता लगाएंगे जो न्यायाधीशों को ऐसे मुद्दों से निपटने में समर्थ बनाए । हम बहुत आश्वस्त नहीं हैं कि न्यायालयों और न्यायाधीशों की बढ़ती संख्या से स्थिति में सुधार होगा जब तक न्यायालयों में साथ-साथ उत्पादकता में वृद्धि न हो । हम पूरी शक्ति से मुद्दे को महसूस करते हैं ।

1.65 न्यायिक सुधार जैसा परिशीलन किया जा रहा है, न केवल आर्थिक बल्कि देश के समग्र विकास के लिए अनिवार्य है ; भारत में, समस्या आर्थिक की तुलना से अधिक मानवीय है । नब्बे प्रतिशत मुकदमेबाजी ग्रामीण लोगों द्वारा है ; पक्षकार आधे एकड़ भूमि के लिए भी लडाई लड़ रहे हैं ; कुटुम्ब बरबाद हो रहे हैं । अतः,समग्र समाधान निकालना होगा ।

निचले न्यायालयों का कम्प्यूटरीकरण

1.66 सरकार ने भविष्य में निचले न्यायालयों को कंप्यूटरीकृत करने का प्रस्ताव किया है । राष्ट्रीय नीति और कार्रवाई योजना के अनुसार तैयार सभी 13,000 जिला और अधीनस्थ न्यायालयों की कंप्यूटरीकरण की स्कीम का अनुमोदन कार्यान्वयन अभिकरण के रूप में राष्ट्रीय इन्फारमेटिक सेन्टर के साथ 8 फरवरी, 2007 को सरकार द्वारा किया गया है । परियोजना के अंतर्गत सभी जिला और अधीनस्थ न्यायालयों को सूचना और संसूचना प्रौद्योगिकी से युक्त करना और उच्चतम न्यायालय और सभी उच्च न्यायालयों के आई सी टी अवसंरचना का उन्नत करना है ।

1.67 परियोजना के प्रथम चरण का क्रियान्वयन 4.42 करोड़ रुपए के प्राक्कलित लागत से सभी राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में किया जा रहा है । छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश राज्यों के न्यायालयों सहित देश के सभी निचले न्यायालयों को प्रथम चरण के कंप्यूटरीकरण के लिए लिया गया है ।

1.68 न्यायालयों की उत्पादकता और दक्षता में सुधार के लिए न्यायालय अभिलेखों को अंकीय किया जा सकता है । उच्चतम न्यायालय के रजिस्ट्री के कंप्यूटरीकरण का बकाया मामलों को कम करने और वैज्ञानिक कार्यसूची प्रबंधन को सुकर बनाने में अपना लाभकर प्रभाव था ।

1.69 शारीरिक उपस्थिति से छूट देकर ई-फाइलिंग और वीडियो-कान्फ्रेन्सिंग से बहुमूल्य समय और संसाधन बचता है और न्याय को और आसानी से पहुंच योग्य और कम खर्चीला विकल्पयुक्त बनाता है ।

त्वरित निपटान न्यायालय

1.70 सरकार ने न्यायिक सुधार के मार्ग पर पहले से ही कई पहल किए हैं । 1562 त्वरित निपटान न्यायालय गठित किए गए हैं जिसने उन्हें अंतरित 18 लाख से अधिक मामलों का निपटान कर दिया है । देश के विभिन्न भागों में स्थापित 190 कुटुम्ब न्यायालयों ने सुलह के माध्यम से वैवाहिक विवादों को शीघ्रता से निपटाया है ।

ग्राम स्तर पर सुधार

1.71 ग्राम न्यायालय विधेयक का अधिनियमन मध्यवर्ती पंचायत स्तर पर अधिक विचारण न्यायालयों के गठन के लिए किया गया है । स्वागतयोग्य पहलू यह है कि प्रक्रियाओं को सरल और नमनीय रखा गया है जिससे कि छह महीनों के भीतर मामलों की सुनवाई और निपटान हो सके । यह भी परिकल्पित है कि ये न्यायालय लोगों के दरवाजे को न्याय दिलाने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए गतिशील होंगे । विशेषकर बायो-जेनेटिक, आई पी आर और साइबर विधि जैसे ज्ञान के प्रमुख क्षेत्रों में न्यायपालिका के प्रशिक्षण और अभिविन्यास पर ध्यान देने की आवश्यकता है ।

1.72 संविधान की उद्देशिका के वादे के अनुसार अपने सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय दिलाने के संवैधानिक वादे को तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक राज्य के तीनों अंग अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका भारतीय गरीबों को अपनी न्याय प्रणाली की समान पहुंच उपलब्ध कराने के लिए साथ-साथ युक्ति का पता लगाने हेतु एक साथ नहीं शामिल होते ।

1.73 तथापि, हमारा यह मत है कि तनिक भी परिवर्तन नहीं लाया जा सकता यदि अधिवक्ता उस उत्तरदायित्व के साथ कार्य नहीं करते जो संविधान द्वारा उन पर अधिरोपित किया गया है । प्रत्येक अधिवक्ताओं में विधि के नियम और संविधान के प्रभुत्व का पोषण करने का दायित्व निहित है ।

बात सोच भी नहीं सकते जब तक समाज की परिवर्तित आवश्यकताओं का समर्थन समुचित विधि द्वारा नहीं किया जाता है ।

1.5 हमें :

- शीघ्र न्याय
- मुकदमेबाजी की लागत में कमी
- न्यायालयों का व्यवस्थित संचालन
- न्यायिक प्रणाली में विश्वास

की आवश्यकता है ।

1.76 भारतीय संविधान उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए अनुच्छेद 124(2) और 217(1) के अधीन नियंत्रण और संतुलन की सुन्दर प्रणाली का उपबंध करता है जहां न्यायपालिका और कार्यपालिका को संतुलित भूमिका दी गई है । इस नाजुक संतुलन को दूसरे न्यायाधीश वाले मामले (सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट आन रिकार्ड एसोसिएंशन बनाम भारत संघ)[2] और राष्ट्रपतीय निर्देश (1998 का विशेष निर्देश संख्या 1)[3] में उच्चतम न्यायालय की राय द्वारा अस्त-व्यस्त कर दिया गया है । अब समय आ गया है कि शक्ति के मूल संतुलन को पुनः कायम किया जाए । विधि आयोग ने अपनी 214वीं रिपोर्ट (2008) में तद्नुसार सिफारिश की है ।

1.77 न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान प्रक्रिया के अति शीघ्र और तत्काल पुनर्विलोकन की आवश्यकता की उपरोक्त सिफारिश की पुनः पुष्टि न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा व्यक्त उनके स्पष्टवादी मत द्वारा हुई है जिन्होंने 10 अक्तूबर, 2008 के अंक में

---

[2] 1993 (4) एस. सी. सी. 441.
[3] 1998 (7) एस. सी. सी. 739.

1.77 न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान प्रक्रिया के अति शीघ्र और तत्काल पुनर्विलोकन की आवश्यकता की उपरोक्त सिफारिश की पुनः पुष्टि न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा व्यक्त उनके स्पष्टवादी मत द्वारा हुई है जिन्होंने 10 अक्तूबर, 2008 के अंक में प्रकाशित फ्रंटलाइन पत्रिका के साक्षात्कार में व्यक्त दूसरे न्यायाधीश वाले मामले में प्रमुख निर्णय लिखा था। जब पूछा गया : "आपने अपने एक भाषण में कहा कि न्यायिक नियुक्तियां न्यायिक विफलता हो गई हैं । क्या आपको अब अपने 1993 के निर्णय पर खेद है?" न्यायमूर्ति वर्मा ने उत्तर दिया : मेरा 1993 का निर्णय, जो इस विशय पर है, को बहुत अधिक गलत समझा गया और गलत उपयोग किया गया । उस संदर्भ में मैंने यह कहा था कि निर्णय का संचालन अब कुछ समय से गंभीर प्रश्न खड़े कर रहा है जिसे अयुक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता है । अतः, कुछ पुनर्विचार करने की अपेक्षा है । मेरे निर्णय में यह उल्लेख है कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया मूलतः कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच संयुक्त या भागीदारी प्रयोग है जिसमें दोनों भाग लेते हैं । व्यापक रूप से, दो सुभिन्न क्षेत्र हैं । एक अभ्यर्थियों की उपयुक्तता की परख के लिए उनके विधिक कुशाग्रता का क्षेत्र है और दूसरा उनका पूर्ववृत्त है । यह न्यायपालिका अर्थात् भारत का मुख्य न्यायमूर्ति और उनके सहयोगी या उच्च न्यायालयों की दशा में उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति और उनके सहयोगी हैं जो विधिक कुशाग्रता का निर्णय करने हेतु सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं । उनकी आवाज को प्रमुखता दी जानी चाहिए । जहां तक पूर्ववृत्त का संबंध है, कार्यपालिका अभ्यर्थियों के पूर्ववृत्त जानने में न्यायपालिका से बेहतर स्थिति में है । अतः, मेरे निर्णय में यह उल्लेख है कि विधिक कुशाग्रता के क्षेत्र में न्यायपालिका

की राय को प्रमुखता दी जानी चाहिए और पूर्ववृत्त के क्षेत्र में कार्यपालिका की राय को प्रमुखता दी जानी चाहिए । दोनों को नियुक्ति के सर्वाधिक उपयुक्त अभ्यर्थियो का पता लगाने के लिए साथ-साथ कार्य करना चाहिए । "

1.78 विधि और न्याय मंत्रालय की संसदीय स्थायी समिति के मत जिसने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्तियों और स्थानान्तरणों के लिए वर्तमान प्रक्रिया को समाप्त करने की सिफारिश की है, इस संदर्भ में काफी सुसंगत है । 20 अक्तूबर, 2008 के हिन्दुस्तान टाइम्स ने यह रिपोर्ट किया : "विधि मंत्रालय न्यायाधीशों की समिति (कालेजियम) को हटाने की विधि और न्याय की संसदीय स्थायी समिति की सिफारिश के पश्चात् 15 वर्ष पुरानी प्रणाली का पुनर्विलोकन करने पर सहमत है । इस समय, कालेजियम न्यायाधीशों की नियुक्तियों और स्थानान्तरणों का विनिश्चय करता है । यह रोचक है कि देश के शीर्षक न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के हाल ही के मामलों के बावजूद सिफारिशें की गई । विधि मंत्री एच. आर. भारद्वाज ने हिन्दुस्तान टाइम्स से कहा कि सदन समिति की सिफारिश स्वीकार कर ली गई थी और मंत्रालय द्वारा तैयार कार्रवाई की गई रिपोर्ट संसद् के समक्ष अब प्रस्तुत की जाएगी । भारद्वाज ने कहा कि "कालेजियम प्रणाली असफल हो गई है। नियुक्तियों और स्थनान्तरण पर इसके विनिश्चयों में पारदर्शिता की कमी है और हम यह महसूस करते हैं कि न्यायालयों में योग्यता वाले न्यायाधीश नहीं आ रहे हैं । " (.....) सरकार ऐसे गंभीर मुद्दे पर शान्त दर्शक नहीं हो सकती है ।" सदन समिति ने कहा था : "1993 में उच्चतम न्यायालय निर्णय के माध्यम से न्यायपालिका ने न्यायाधीशों की नियुक्तियों और स्थानान्तरणों का नियंत्रण छीन लिया था । कलेजियम

प्रणाली एक आपदा है इसे दूर किए जाने की आवश्यकता है । "विधि और न्याय मंत्री एच. आर. भारद्वाज ने कहा कि " इस महत्वपूर्ण विषय पर पुनर्विलोकन करने का सही समय है ।" उन्होंने कहा कि वर्ष 1993 तक कोई समस्या नहीं थी जब न्यायपालिका ने नियुक्तियों से संबंधित संविधान के अनुच्छेद को फिर से लिखने का प्रयास किया । उन्होंने कलेजियम की नई विधि का सृजन किया जो गलत था । लोकतंत्र में, संसद की प्रमुखता की चुनौती नहीं दी जा सकती है ।"

1.79 कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय की विभाग संबंधी संसद स्थायी समिति के अध्यक्ष और संसद-सदस्य डा. ई. एम. सुदर्शन नचियप्पन ने 4 अगस्त, 2008 को राज्य सभा के माननीय सभापति को प्रस्तुत अपनी 28वीं रिपोर्ट में इस प्रकार कहा :

> "मैं यह कहते हुए समाप्त करना चाहता हूं कि सरकार इस पर शीघ ही विचार करे कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्तियां पारदर्शी रूप में की जाएं । हमने दो तरह से सिफारिश की है : एक यह है कि हमें इस पर विचार करना है कि कलेजियम प्रणाली को हटा दिया जाए । इसके बजाय हमने सुझाव दिया कि सशक्त समिति, जो न्यायपालिका, कार्यपालिका और संसद् के प्रतिनिधियों से मिलकर बनेगी, स्थापित की जाए । न्यायाधीश (जांच) विधेयक में वह हमारी सिफारिश थी । और, तत्पश्चात् चूंकि नियुक्तियों में विलम्ब होगा इसलिए हमने कहा कि योग्य व्यक्तियों की पहचान करने के आरंभ से ही सिफारिशों के विभिन्न स्थलों चाहे यह उच्च न्यायालय, या राज्यपाल या विभाग का और अंततः उच्चतम न्यायालय का स्तर हो, प्रत्येक स्तर पर पारदर्शिता होनी चाहिए और

तब इसे वेबसाइट पर डालना चाहिए और इस प्रकार वह व्यक्ति जो संवैधानिक पद ग्रहंण करने जा रहा है, की जानकारी आम जनता को हो जाए और जनता में उनकी पृष्ठभूमि की चर्चा करने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए और अंततः भारत के राष्ट्रपति द्वारा अधिपत्र जारी करने की प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए । लेकिन, इस समय यह हो रहा है कि व्यक्ति की पहचान किए जाने के दिन से अधिपत्र जारी किए जाने तक इसमें अंतर्ग्रस्त व्यक्तियों के सिवाय किसी को भी इसकी कोई जानकारी नहीं होती । यहां तक कि ऐसे व्यक्ति जिनकी पहचान की गई है और जिन्हे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनाए जा रहे हैं, को भी इसके बारे में जानकारी नहीं होती है । इस तरह की गोपनीयता लोकतंत्र के लिए ठीक नहीं है ।"

1.80 इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायमूर्ति सरकार की नीति के अनुसार राज्य के बाहर से होता है । वरिष्ठतम न्यायाधीश जो कलेजियम गठित करते हैं, भी राज्य के बाहर से होते हैं । परिणामी स्थिति यह है कि कलेजियम गठित करने वाले न्यायाधीश अभ्यर्थियों के नाम और पूर्ववृत्त से भिन्न नहीं होते हैं और प्रायः नियुक्तियां पर्याप्त सूचना की कमी से ग्रस्त रहती हैं ।

1.81 जैसा विधि आयोग की 214वीं रिपोर्ट में सिफारिश की गई थी, इस सरकार के पास दो विकल्प उपलब्ध हैं । पहला माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तीन न्यायाधीशों वाले मामले के पुनर्विचार की मांग करना है । दूसरा विकल्प भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और नियुक्तियां करने में कार्यपालिका की शक्ति की प्रमुखता प्रत्यावर्तित करने वाली विधि अधिनियमित किया जाना है ।

2. सिफारिशें

2.1 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश माननीय श्री न्यायमूर्ति अशोक कुमार गांगुली ने नवम्बर, 2008 के हाल्सबरी ला मासिक में प्रकाशित "न्यायिक सुधार" शीर्षक वाले अपने लेख में कुछ मानक सुझाए हैं जिनका बकाया मामलों को कम करने के लिए बहुत कड़ाई से पालन करने के लिए न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं को अवश्य सहमत होना चाहिए । सुझावों को नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

[1] न्यायालय कार्य-समय का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए । न्यायाधीशों को समयनिष्ठ होना चाहिए और अधिवक्ताओं को तब तक स्थगनों की मांग नहीं करनी चाहिए जब तक यह अनन्यतः आवश्यक न हो । स्थगन की मंजूरी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 17 के उपबंधों का कठोरतः पालन करते हुए दी जानी चाहिए ।

[2] एक ही मुद्दों पर कई मामले फाइल किए जाते हैं और एक निर्णय भारी संख्या में मामलों का विनिश्चय कर सकता है । तकनीक की सहायता से ऐसे मामलों को जोड़ देना चाहिए और पूर्विकता आधार पर ऐसे अन्य मामलों के निपटान में उपयोग किया जाना चाहिए ; इससे सारतः बकाए मामलों में कमी आएगी । इसी प्रकार, पुराने मामले, जिसमें से अधिकांश निरर्थक हो गए हैं, को अलग किया जा सकता है और सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जा सकता है और प्रसामान्यतः उनके निपटान में अधिक समय नहीं लगेगा । यह मुख्य मामलों के निपटान के पश्चात् भी फाइल किए गए कई अंतवर्ती आवेदनों के लिए भी सही है । तकनीक की सहायता से ऐसे मामलों का पता लगाया जा सकता है और शीघ्रता से निपटाया जा सकता है ।

[3] न्यायाधीशों को युक्तियुक्त समय के भीतर अवश्य निर्णय देना चाहिए और उस मामले में अनिल राय बनाम बिहार राज्य (2001) 7 एस. सी. सी. 318 वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों का सिविल और आपराधिक दोनों मामलों में ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए ।

[4] चौंका देने वाले बकाया मामलों पर विचार करते हुए, उच्चतर न्यायपालिका में अवकाश कम से कम 10 से 15 दिन कम देना चाहिए और न्यायालय कार्य समय कम से कम आधे घंटे बढ़ाया जाना चाहिए ।

[5] अधिवक्ताओं को अति विस्तृत और पुनरावृत्तिकारक बहस में कटौती करनी चाहिए और इसकी पूर्ति लिखित टिप्पणों से करनी चाहिए । किसी भी मामले में मौखिक बहस का समय एक घंटा तीस मिनट से अधिक नहीं होना चाहिए जब तक मामले में विधि का जटिल प्रश्न या संविधान का निर्वचन अंतवर्लित न हो ।

[6] निर्णय स्पष्ट और निर्णायक तथा संदिग्धता से मुक्त होना चाहिए । ये (निर्णय) आगे मुकदमेबाजी को बढ़ावा देने वाले नहीं होने चाहिए । हमें लगभग 150 वर्ष पहले किए गए लार्ड मैकाले के कथन का स्मरण करना चाहिए ।

" हमारा मात्र यह सिद्धांत है –

समरूपता रखे जब आप इसे रख सकते हों, अनेकता रखें जब आप इसे अवश्य ही रख सकते हो, सभी परिस्थितियों में, निश्चितता बनाए रखें । "

[7] अधिवक्ताओं को किन्हीं भी परिस्थितियों में हड़ताल का सहारा नहीं लेना चाहिए और हरीश उप्पल (भूतपूर्व-कप्तान) बनाम भारत संघ (2003) 2 एस. सी. सी. 45 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ

के विनिश्चय का पालन करना चाहिए ।

मैं जानता हूं कि कोई बात करने से लिखना आसान है और इन सभी सुधारों के लिए काफी अनुशासन और आत्म-निरीक्षण तथा अनुभूति की अपेक्षा है कि इन सुधारों के बिना वर्तमान प्रणाली खतरे में है । न्यायाधीश और अधिवक्ता दोनों को अपनी सोच बदलनी होगी । जब तक सुधार के प्रति हमारा मानसिक अवरोध नहीं नरमाता है तब तक बाह्य उपचारों के सभी खुराक असफल हो जाते हैं । हमें वह बात अवश्य स्मरण रखनी चाहिए जो गांधी ने कहा था : यदि आप कोई परिवर्तन करना चाहते है तो आपको परिवर्तित होना होगा । "

2.2 हम उपरोक्त सुझावों को स्वीकार करते हैं और तदनुसार सिफारिश करते हैं ।

ह/-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

अध्यक्ष

ह/-	ह/-
(प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद	(डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल)
सदस्य	सदस्य-सचिव